तिसरे विश्वयुद्ध का समाधान

# जल-साक्षरता

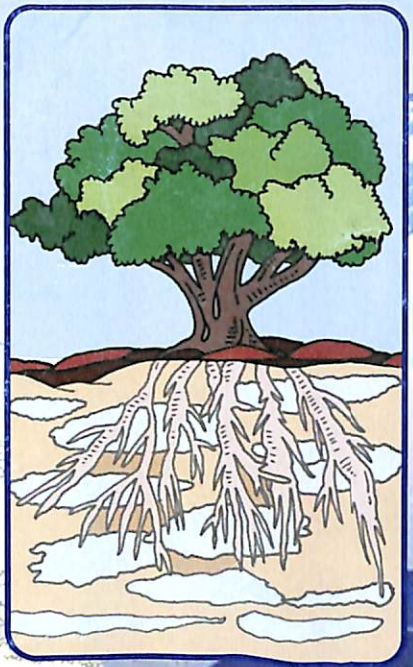

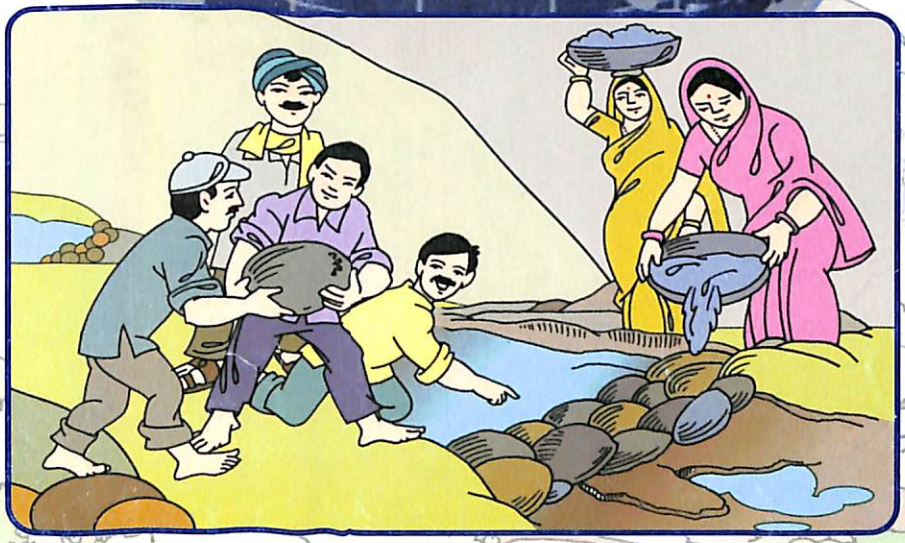

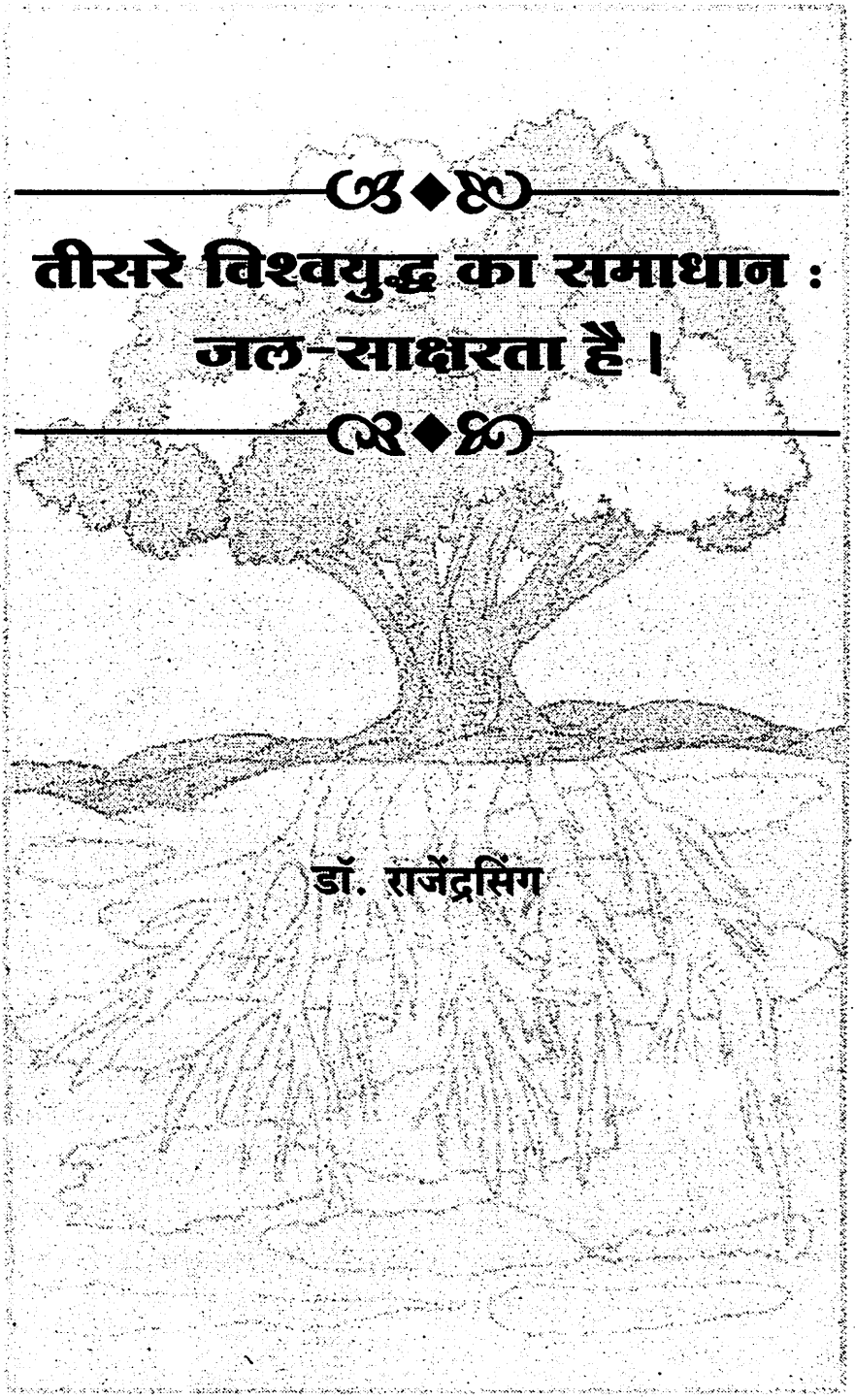

# तीसरे विश्वयुद्ध का समाधान : जल-साक्षरता है।

डॉ. राजेंद्रसिंग

# विषय सूची


| अ.क्र. | विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| १. | आमुख | ०५ |
| २. | जलवायू परिवर्तन हेतू शिक्षा का भविष्य एवं चुनौतिया | ०७ |
| ३. | लाल, निली, हरी एवं पिली गर्मी क्या होती है ? | ०७ |
| ४. | मौसम का मिजाज सुधर गया। धरती का बुखार उतर गया। | ०८ |
| ५. | गांवाई दस्तूर | ११ |
| ६. | तथा-कथित शिक्षित लोगों की समझ | १२ |
| ७. | पश्चिमी सभ्यता में जल व मिट्टी का स्थान | १३ |
| ८. | बड़े बांधों के निर्माण का असली उद्देश्य | १४ |
| ९. | छोटे तालाबों का प्रत्यक्ष अनुभव | १५ |
| १०. | चम्बल का प्रत्यक्ष अनुभव | १८ |
| ११. | आर्थिक लाभ के साथ-साथ आनन्दानुभूति | १८ |
| १२. | तालाब व्यवस्था आज के अभिजात वर्ग की आंख में किरकरी! | १९ |
| १३. | क्या हम आशा करें ? | २० |
| १४. | जलवायु परिवर्तन हेतु शिक्षा का भविष्य एवं चुनौतियां : | २२ |
| १५. | जलसाक्षरता महाराष्ट्र सरकार की पहल | २४ |
| १६. | तीसरे विश्वयुद्ध का समाधान : जल-साक्षरता है। | २८ |

# आमुख

दुनिया में मिट्टी का कटाव, पानी का बहाव और मिट्टी जमाव से सुखाड़-बाढ़ आने लगी है। यह संकट खास कर मध्य एशिया अफ्रीका में है, लेकिन इनके उजाड़ ने अमेरिका-यूरोप की जनसंख्या बढ़ाने शहरीकरण तेज करने का काम किया है। शहरीकरण ने धरती को नंगी, सीमेन्ट कोंकरीट के जंगल से कुरूप बनाया है। इसे बुखार चढ़ने लगा है। मौसम का मिजाज बिगड़ गया है। यह जल संकट दुनिया भर में है। इसने लोगों को मजबूर करके पलायन बढ़ाया है। इसके कारण विकसित कहलाने वाले क्षेत्रों, राष्ट्रों की जनसंख्या का घनत्व बढ़ाया है।

जनसंख्या बढ़ोत्तरी ने तनाव बढ़ाया है। यह विश्व युद्ध के आसार पैदा कर रहा है। इसका मूल कारण बाढ़-सुखाड़ जल संकट है। यही संकट आज की सबसे बड़ी चुनौती है। इसका समाधान राजस्थान और महाराष्ट्र के अनुभव है।

महाराष्ट्र की अग्रणी, महाकाली नदी, हिवरे बाजार, रालेगण सिद्धि के साथ-साथ अब नये दर्जनों गांव हैं। इसी प्रकार राजस्थान की अरवरी, सरसा, रूपारैल, साबी, भगाणी, जहाजवाली, शैरनी व महेश्वरा के हजारों गांव हैं। इन्हीं अनुभवों के द्वारा हम विश्वयुद्ध से बच सकते हैं।

बड़े बांधों की लूट से बचना फसल-चक्र द्वारा जलवायु परिवर्तन अनुकूलन करके समृद्ध बनाने की जल साक्षरता की यह पुस्तिका है। यह पुस्तिका देशभर के महात्मा गांधी की विचार धारा में विश्वास रखने वालों के लिए, जल संरक्षण में लगे जल-नायकों, जल-योद्धाओं, जल-प्रेमियों, जल-कर्मियों, जल-दूतों व जलसेवको के प्रकाशित की है। यह पुस्तिका पूरे देश-दुनिया के लिए जल साक्षरता का पहला पाठ पढ़ाने वाली है। मैंने तो यह पुस्तिका देश के जल शिक्षकों के लिए लिखी है।

– जलपुरुष श्री राजेन्द्र सिंह

# जलवायू परिवर्तन हेतू शिक्षा का भविष्य एवं चुनौतिया

**सामुदायिक विकेन्द्रित जल, मिट्टी प्रबंधन द्वारा नदी पुनर्जीवन एवं जलवायु परिवर्तन अनुकूलन से किसानों को स्थायी समृद्धि मिलती है।**

आज का अकाल प्राद्धतिक क्रोध तो है लेकिन प्राद्धतिक क्रोध यह कैसे बना? प्रद्धति में क्रोध कौन पैदा करता है? इसका जबाव धरती पर बढती लाल गर्मी है। लाल गर्मी जहरीली गैसों से भरी हुई शुष्क गर्मी होती है। शुष्क गमी को लाल गर्मी कहते हैं। जब जलवायु में नमी और प्राणवायु बढती है तब उसे हरी गर्मी कहते हैं। और जब हरी गर्मी के प्रभाव से नीली गर्मी मिलती है। वर्षा होती है। यह जल मिट्टी को दबा देती है तो पीली गर्मी जन्म लेती है। कभी-कभी लाल गर्मी को हरी गर्मी दबाकर उस जगह को खेती और जैव उत्पादन योग्य बनाती है वो पीली गर्मी कहलाती है। यह ज्यादातर खेती और उद्योगों के मिश्रित क्षेत्र में होती है। जब भी धरती पर लाल गर्मी का प्रभाव बढता है तो प्रद्धति का क्रोध बाढ़ और सुखाढ़ के रूप मे दिखाई देता है। इस गर्मी के कारण बादल धरती से ऊपर दूर चले जाते हैं। वायु दबाव की गति से बादल बहकर एक-दूसरे बादलों से टकरा जाते हैं तो पहाड़ पर बाढ़ आ जाती है और बिना बरसे चले जाते हैं तो सूखाढ़ आ जाता है। वैसे सामान्यत: बिना बरसे जाने वाले बादल पहाड़ों की तरफ हरियाली से या नमी से आकर्षित होकर वहां बादल फटकर अतिवृष्टि कर देना यह भी प्रद्धति का क्रोध माना जा सकता है। पुराने जमाने में इसे प्रलय कहते थे।

**लाल, नीली, हरी, एवं पिली गर्मी क्या होती है?**

**लाल गर्मी** जहरीली गैसों से भरी हुई शुष्क गर्मी होती है । शुष्क गर्मी को लाल गर्मी कहते है । यह जब धरतीपर या नंगी धर्तीपर या सिमेंट कॉंक्रीट पर पडती तो वह शरीर के लिये घातक होती है,लेकीन जब वही गर्मी समुद्र के उपर पडती है तो समुद्र के खारे पानी को मिठा बनाकर बादल बनाती है ।

**नीली गर्मी** मे जलतत्व (H2O)ज्यादा होता है,और वह मानवीय जगत के लिये बहुत लाभदायी होती है। पुरे जलवायू को बनाने,बदलने के कामोमे उसकी भूमिका होती है। यह सदैव धरती के तरफ आकर्षित होती है।

**हरी गर्मी** मे प्राणतत्व (O2) एवं जलतत्व (H2O) ज्यादा होता है। और दुसरे वायु भी कम मात्रा मे होते है। यह जब नीली गर्मी से मिल जाती है तो वर्षा होती है। वर्षा का पानी जब मिट्टी के साथ मिलता है तो नया उत्पादन होता है। यह जल का लैंगिक उत्पादक तत्व है ।

**पिलीगर्मी** मे CO2, CO, नायट्रोजन आदी वायू का पुंज होता है और यह पुंज नया उत्पादन कराता है।

बाढ़-सुखाढ़ को पहले प्राकृतिक क्रोध से जन्मी प्रलय कहते थे। आज-कल इनको नाम बादल फटना, बादल टूटना एल नीनो और सुनामी जैसे नये नामों से जानते हैं। परंतु यह सब प्राकृितक सम्मान में आई कमी तथा मानवीय दबाव और दखल बढ़ने से हुआ है। यह दबाव जब तक बढेगा तभी तक ऐसा ही प्राकृतिक क्रोध बढेगा। इसे रोकने की अभी बहुत जरूरत है। देश भर में ऐसे प्रयास तो बहुत हुए हैं लेकिन ये क्षेत्र कम और छोटे थे। इसलिए इनका अच्छा प्रभाव कम स्थानों पर ही दिखाई देता है।

**मौसम का मिजाज सुधर गया। धरती का बुखार उतर गया।**

राजस्थान में यह अच्छा असर मरुस्थल में इन्द्रा गांधी केनाल की हरियाली और खेती में है। अधो मरुस्थलीय क्षेत्र (अरावली) में पिछले ३२ वर्षो में १०८५३ वर्ग कि.मी. में ११६०० निर्माण जल संरचनाओं ने मिट्टी का कटाव रोककर मिट्टी में हरियाली बढाने का काम हुआ है। इसी से पीली गर्मी और हरी गर्मी का प्रभाव बढ़ने से मौसम का मिजाज सुधर गया। धरती का बुखार उतर गया। यही जलवायु परिवर्तन अनुकूलन प्रक्रिया है।

इसी से प्राकृतिक क्रोध कम हुआ है। अब इस क्षेत्र में बाढ़-सुखाढ़ की मार वैसी नही है। वर्षा ऋतु उसी क्षेत्र मे संरक्षित होकर वहां के कुओं का पुनर्भरण कर दिया है। इससे इस क्षेत्र में खेती और हरियाली बढ़ी है। पिछले ३२ वर्षो में मिट्टी में बढ़ती नमी और हरियाली ने यहां धरती का चेहरा बदल दिया। मौसम में हरी गर्मी बढ़ने से यहां तापक्रम अब पहले जितना ऊपर नहीं जाता। उससे ३ डिग्री कम रहने लगा। लेकिन शहरी और औद्यौगिक क्षेत्रों में बढ़ गया है।

जिन क्षेत्रों में नमी और हरियाली बढ़ी है वहां तापक्रम सामान्य से कम होना सामान्य घटना है। यही सामान्य प्रक्रिया जलवायु परिवर्तन अनुकूलन कहलाता है। यही अनुकूलन अब राजस्थान के वर्षा चक्र में परिवर्तन कर रहा है। इसी से यहां का फसल चक्र बदला है। थानागाजी क्षेत्र का फसल चक्र अभी तो सुख-समृद्धिदायक बन रहा है।

नई सब्जी मण्डी का बनना इस क्षेत्र में नई घटना है। इससे युवाओं को काम-अर्थ मिला है। काम-अर्थ लालच बढ़ाता है। लेकिन इस क्षेत्र में प्राकृतक सम्मान भी लोगों के मन में बढ़ गया है तभी यहां जलवायु परिवर्तन अनुकूलन संभव हुआ है। यही दुष्काल और बाढ़ मिटाने का रास्ता है। इसी से प्रकृति का क्रोध शांत होगा। दुनिया में समृद्धि और शांति कायम होगी। मानवीय दिमागी अकाल भी इसी रास्ते से समाप्त होगा।

लालची विकास का रास्ता मानवीय भोग और प्राकृतिक क्रोध को बढ़ा देगा। इसी से बाढ़ और सूखाढ़ आयेगा। अकालमुक्ति की तैयारी जल साक्षरता जल संरक्षण का संवाद है। वर्षा की हर बूंद को सहेज कर धरती के पेट मे रखें। पहले धरती के ऊपर इकट्ठा करें फिर उसे ही वाष्पीकरण से बचाने के लिए भू-जल भंडारो में भर दें। भू-जल भंडार भरने का काम इंजीनियर नहीं जानते भू-वैज्ञानिक जानते हैं। ये दोनों मिलकर काम नही करते इसलिए भू-जल भण्डार खाली करने वाला ही काम हो रहा है, भरने वाला काम नहीं हुआ है।

दुनिया में सबसे ज्यादा भू-जल शोषण भारत में हुआ है। इसी कारण आधे से ज्यादा वर्षा होने पर भी वर्ष २०१७-१८ भयंकर अकाल की मार झेल रहा है। आधे से ज्यादा भारत भूमि पर इतिहास में पहली बार अकाल की मार पड़ी है १३ राज्य ३२७ जिले अकालग्रस्त होकर भी आज १ जुलाई २०१७ आते ही अकाल को भूल गये। पहले की तरह ही मुम्बई का वर्षा जल बहकर आज समुद्र मे मिल गया है। मुम्बई को तो जंगलों, गांवों का जल मिल जाता है।

गांव, जंगल व जंगली जीव अपने पानी के लिए तरसते रहते हैं। मुम्बई अपना पानी समुद्र में बहाता रहता है। जुलाई की वर्षा मुम्बई को ४ महीना पानी पिला सकती थी, ज्यादा भी। लेकिन इसी विषय में तो हमारी बुद्धि पर अकाल है। यह अकाल मिटाने हेतु ही हमे ठेकेदारी द्वारा होने वाला केन्द्रीय जल-प्रबंधन को विकेन्द्रित जल-प्रबंधन मे बदलना होगा। यह विकेन्द्रित जल-प्रबंधन प्रकृति और मानवता दोनों को ही बराबरी प्रदान करती है।

केन्द्रीय जल-प्रबंधन बडे बांध केवल मानवीय जरूरत पूरी करने पर ही ध्यान देते हैं और प्रकृति पर बोझ बनकर बाढ़-सुखाढ़ पैदा कर देता है। इस तरह के जल-प्रबंधन में विस्थापन और विकृति बहुत जन्मती है जबकि सामुदायिक जल-प्रबंधन इस प्रकार के दोषो से मुक्त होता है। इसमें हरियाली और मानवता किसी का भी विस्थापन नहीं होता है। सभी को समान रूप से शुभ एवं लाभकारी होता है। इस प्रकार का प्रबंधन एक छोटा समूह स्वयं कर सकता है उसके अन्दर मालिकाना भाव काम के साथ-साथ जग जाता है। उसी में सांझे भविष्य को सुधारने का काम और अनुशासित भाव जन्मता है। यही हमारे वैश्विक जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव को रोककर जलवायु परिवर्तन अनुकूलन की ओर ले जाता है। यह अनुभव तरुण भारत संघ के पिछले ३३ वर्षो से राजस्थान में हुए कार्यो का परिणाम और अनुभव हम सबका उत्साहवर्धन करता है। इस तरह का काम पूरी दुनिया में इस २१वीं शताब्दी मे करने की जरूरत है।

किसी भी देश की प्रगति या अवनति में वहां की जल सम्पदा का काफी महत्व होता है। जल की उपलब्धि या प्रभाव के कारण ही बहुत सी सभ्यतायें एवं संस्कृतियां बनती और बिगडती है। इसलिए हमारे देश की सांस्कृतिक चेतना में जल का काफी ऊंचा स्थान रहा है। वर्षा का जल को उसी स्थान पर रोक लेते थे। हमारे पूर्वज जानते थे कि तालाबों से जंगल व जमीन का पोषण होता है। भूमि के कटाव एवं नदियों के तल में मिटटी के जमाव को रोकने में भी तालाब मददगार होते हैं। जल के प्रति एक विशेष प्रकार की चेतना और उपयोग करने की समझ उनकी थी। इस चेतना के कारण ही गांव के संगठन की सूझ-बूझ से गांव के सारे पानी को विधिवत उपयोग में लेने के लिए

तालाब बनाये जाते थे। इन तालाबों से अकाल के समय भी पानी मिल जाता था। इनकी देख-भाल, रख-रखाव, मरम्मत आदि के कार्मों से गांव के संगठन को मजबूत बनाने में मदद मिलती थी।

## गांवाई दस्तूर

जैसा कि गांवों की व्यवस्था से संबंधित अन्य बातों में होता था, उसी तरह तालाब के निर्णाण व रख-रखाव के लिए भी गांववासी अपनी ग्राम सभा में सर्वसम्मति से कुछ कानून बनाते थे। ये कानून 'गंवाई दस्तूर' कहलाते थे। ये दस्तूर 'गंवाई बही' में लिखे जाते थे, या मौखिक परम्परा के जरिये पीढ़ी दर पीढ़ी चले जाते थे। गांव में आने वाले बाहरी व्यक्ति को भी इन गंवाई दस्तूर का पालन करना पड़ता था। ये गंवाई दस्तूर चूंकि सामान्य बुद्धि के अनुसार कायम होते थे। इसलिए करीब-करीब हर गांव में एक से ही होते थे। अत: सामन्य तौर से तो लोग इससे परिचित ही होते थे, नहीं तो भी बाहर से आने वाला व्यक्ति सहज ही उन्हें समझ लेता था।

अलवर जिले के इस क्षेत्र में तालाब संबंधी कुछ पुराने गंवाई दस्तूरों से ज्ञान हुआ है कि तालाब की 'आगोर' में कोई जूता लेकर प्रवेश नहीं करता था। शौचादि के हाथ अलग से पानी लेकर आगोर के बाहर धोये जाते थे। आगोर में किसी गांव सभा की अनुमति के बिना मिट्टी खोदना मना होता था। आगोर से नहीं बल्कि तालाब के जल ग्रहण क्षेत्र (catchment area) तक में शौचादि के लिए जाना मना था। किसी प्रकार गंदगी फैलाने वाले को तालाब की सफाई करके प्रायश्चित करने का सुझाव दिया जाता था। प्रायश्चित के लिए तालाब की पाल पर पेड़ लगाने तथा बड़ा तक उसकी देख-भाल करने की परम्परा थी।

तालाब के जल-ग्रहण क्षेत्र से भूमि कटकर नहीं आये और तालाब में जमा नहीं हो, इसकी व्यवस्था तालाब बनाते समय ही कर दी जाती थी, जिससे लम्बे समय तक तालाब उथले नहीं हो पाते थे। जब तालाब की मरम्मत करने की आवश्यकता होती थी, तो पूरा गांव मिल-बैठकर, तय करके यह काम करता था। तालाब से निकलने वाली मिट्टी खेतों में डालने या कुम्हारों के काम में आती थी।

तालाब को गांव की सार्वजनिक सम्पति माना जाता था। गांव के लोग जब किसी दूसरे गांव को जाते थे, तो सबसे पहले तालाब को अपने गांव की सम्पति में गिनाया जाता था। जिस गांव का जैसा तालाब होता था, वैसा ही उस गांव को माना जाता था। गांव का तालाब अच्छा है, तो उस गांव को समृद्ध, संगठित, शक्तिशाली माना जाता था। गांव के महत्वपूर्ण निर्णय लिए जाते थे।

**तथा–कथित शिक्षित लोगों की समझ**

यह परम्परा १८९० तक तो बराबर चली। इसके बाद अंग्रेजों का ध्यान हमारे गांवाई संगठनों, स्वैच्छिक संस्थाओं तथा लोगों के अभिक्रम को खत्म करने की तरफ गया। उन्होंने पूरी सक्रियता से इन सब सहज चलने वाली गांवाई व्यवस्थाओं को खत्म करने की योजना विभिन्न प्रकार से बनाई–कहीं नहरी सिंचाई योजना तो कही बड़े बांध आदि के स्वप्न दिखाकर, तो कहीं हमारी उच्च सांस्कृतिक धरोहर, तालाब के जल की निंदा करके और कहीं हमारे देश की शिक्षापद्धति को प्रदूषित करके हमारें ही देशवासी तथा–कथित शिक्षित कहे जाने वाले लोगों द्वारा हमारी संस्कृति की बुराई कराके, नष्ट कराने के प्रयासों के बाद भी समृद्ध तालाबों की सम्पन्न परम्परा चालू रही। इन तालाबों से सिंचाई भी होती थी। इस तरह तालाब गांव की विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का हमारे ये तालाब जीते–जागते उदाहरण थे। राजस्थान के जिन क्षेत्रों मे केवल दो–चार सेन्टीमीटर वर्षा होती थी, उनमें भी इन तालाबों के सहारे लोग व पशु जीवित रहते थे। जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर के महा मरूस्थल क्षेत्र कम वर्षा के बावजूद आज की अपेक्षा ज्यादा विकसित थे। पानी कम होते हुए भी इस क्षेत्र की पुरानी हवेलियां, महल, बड़े–बड़े बाजार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केन्द्र यहां की तालाब व्यवस्था के कारण ही सम्पन्न हुए थे और उसकी उपयोगिता के प्रमाण थे।

१८९० तक अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव देश में बढ़ गया था और अंग्रेजो का षडयंत्र सफल होने लगा था। सबसे पहले अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव हमारे यहां के राजाओं, सामन्तों, जागीदारों आदि पर पड़ा। जो पहले अकाल के समय तालाबों के निर्माण पर अधिक ध्यान देते थे, ये अब अपनी राजधानी के शहरों की चार दीवारी बनाने आदि

कामों को महत्व देने लगे। इनके पूर्वजों ने जो तालाब बनाये थे वे बिन, देख-रेख के टूटने लगे, और जो एक बार टूट गया उसका पुन:निर्माण नहीं हुआ। इनको समय ने और मिट्टी की गाद ने बूर दिया। इस प्रकार पुराने तालाब खत्म होते गयें।

हमारे देश में यह कहावत प्रचलित है कि "जैसा राजा, वैसी प्रजा"। यह कहावत चरितार्थ हुई और ग्रामवासियों में भी तालाबों के प्रति उदासीनता बढ़ती गई। इसी प्रकार गांवों के तालाब नष्ट हुए और अंग्रेजों की नीति गांवों में भी अपना रंग दिखाने लगी। ग्रामसमाज के टूट जाने के कारण तालाबों का निर्माण, रख-रखाव और मरम्मत बंद हो गये। गांव के तालाबों के साथ-साथ गांव के संगठन भी बिखरने लगे।

**पश्चिमी सभ्यता में जल व मिट्टी का स्थान**

स्वतंत्रता की लड़ाई में केवल बापू ने अपनी बातचीत और भाषणों में अवश्य गांव के तालाब को प्रतिष्ठित किया था, लेकिन अन्य लोगों का इस तरफ कोई विशेष ध्यान केन्द्रित नहीं हुआ। अंग्रेजी शिक्षा और अंग्रेजियत में पले हमारे दूसरे नेता हमारी समाज व्यवस्था की खूबी को समझ नहीं पाये, बल्कि उसे हीन मानकर उसकी निंदा करते रहे। उस समय बापू ने चर्खे के साथ-साथ गांव के तालाब-चारागाह के रख-रखाव को भी रचनात्मक कार्यक्रमों से जोड़ा होता तो अच्छा होता, हालांकि उनको खुद को तो इन सब बातों का ध्यान था। आजादी मिलने के समय ही बापू ने तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू का ध्यान ग्राम-व्यवस्था को पुनर्जीवित करने की और दिलाया था, लेकिन नेहरू पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित थे। उनकी प्राथमिकता भाखड़ा जैसे बांध बनाने की थी देशी-विदेशी, निहित-स्वार्थी तत्वों ने इसका खूब फायदा उठाया। इन बड़ी-बड़ी सिंचाई योजनाओं से तालाबों पर सबसे अधिक प्रहार हुआ।

बडे बांध बनाने पर भारत सरकार २०१८ तक अरबों-करोड़ों रुपये खर्च कर चुकी है। इन योजनाओं से दो करोड़ हैक्टर जमीन सिंचित होने का सरकारी दावा था। वास्तव में कितनी जमीन की सिंचाई ये योजनायें कर रही है। यह कहा नहीं जा सकता, क्योंकि जिस प्रकार इनके आंकड़े इकठ्ठे किये जाते हैं, उसके कारण सारी बात

शंकास्पद है। इस अर्से में २४६ बड़ी योजनायें शुरू की गई थी, उनमें सिर्फ ६५ योजनायें अभी तक पूरी हुई है। इन बड़ी योजनाओं में अब जो घाटे की धारा बह रही है वह चौंकाने वाली है। एक वर्ष में हजारों करोड़ का घाटा कहां से, कैसे पूरा होगा? यह बात निश्चित ही जागरूक व्यक्ति को चिन्तित करती रहती है। लेकिन इन योजनाओं से बड़े-बड़े ठेकेदारों को मुनाफा, इन्जीनियरों को घूस और नौकरी तथा नेताओं को लूट में हिस्सा मिलने के साथ वाह-वाही जो हासिल होती है, और गांवों के पानी से बड़े उद्योगपतियों को सस्ती बिजली मिलती है। बड़े देशों की और बड़े कारखानों की बड़ी मशीनें, सीमेन्ट आदि की बिक्री करना, नहर बनाना, जिसमें गांव की सड़के भी सीमेन्ट से बनने लगी। मंत्री अपने उद्योगों की सामग्री अपने मंत्रालय के कामों से उपयोग करते है। गरीबों की जमीन जाये-इस तरह सारा लाभ चंद बड़े घरानों को मिलता है। यही सब हमारें नीति-निर्धारकों की "विकास" की परिभाषा है। आज बस विकास का लालची नारा हमें सुनाया जा रहा है। हम विकास में फंस गये हैं। यह विकास विस्थापन, विकृति और विनाश ही होता हैं तालाबों से यह सब नहीं होता है। इससे शांति, सदभावना और स्थायी समृद्धी होती है।

## बड़े बांधों के निर्माण का असली उद्देश्य

बड़े बांधों से "सिंचाई" का बहाना तो सिर्फ लोगों की आंखों में धूल झोंकने के लिये थ। अगर सही तथ्य सामने आतें जाये तो वास्तव में बड़े बांधों के कारण कुल-मिलाकर सिंचाई पहले की अपेक्षा कम ही हुई है क्योंकि इन बांधों से नदियों के प्रवाह रूक जाने के कारण इन प्रवाहों के दोनों और की लाखों एकड़ जमीन और उसमें स्थित कुएं सूख गये हैं तथा भूगर्भ जल का स्तर पिछले दस-बीस बरसों में पचास से एक सौ फीट तक नीचे चला गया है। इन बड़े बांधों का असली उद्देश्य तो किसान की स्वावलम्बी व्यवस्था को तोड़कर उसे केन्द्रित करने और बड़े-बड़े घरानों या बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को लाभ पहुंचाने का था। गांव-गांव में सिंचाई की जो परम्परागत स्वावलम्बी व्यवस्था थी उसे समाप्त करके किसान का भाग्य इन लोगों के हाथों में सौंप दिया गया।

इन सीधे-सादे लेकिन असरकारक तालाबों की अब भी उपेक्षा करने की भूल की जा रही है। १९५० में भारत के कुल सिंचित क्षेत्र की १७ प्रतिशत सिंचाई तालाबों से की जाती थी। ये तालाब सिंचाई के साथ-साथ भू-गर्भ के जलस्तर को भी बनाये रखते थे, इस बात के ठोस प्रमाण उपलब्ध है। १९५० से पहले तो हमारे तालाब ही सिंचाई के प्रभावी साधन थे। सूदूर भूतकाल में तो ८ प्रतिशत से अधिक सिंचाई तालाबों से ही होती थी। तालाबों में पाये गये शिला-लेख इसके जीते-जागते प्रमाण हैं। ये तालाब हिन्दुस्तान के हर कोने में पाये जाते रहे हैं। सबसे अधिक सुमन्द्रतटीय जिलों में तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और राजस्थान में तालाबों से होने वाली सिंचाई का क्षेत्रफल १८९० तक निरन्तर बढ़ता रहा था। इस स्वावलम्बी सिंचाई योजना का अंग्रेजों ने जानबूझकर खत्म करने का जो षड़यंत्र रचा था, उसे स्वतंत्र भारत के योजनाकारों ने बरकरार रखा है और वर्तमान, जनविरोधी, ग्राम-गुलामी की सिंचाई योजना को तेजी से लागू किया है।

गत वर्षो के भयंकर अकाल ने एक बार फिर तालाबों की याद दिलाई है। इस पर जगह-जगह कुछ लोगों ने अध्ययन किये हैं। इन अध्ययन-कर्ताओं में श्री वान ओप्पन तथा सुब्बाराव का मानना है कि तालाबों से सिंचित जमीन असिंचित भूमि की अपेक्षा तीन गुनी अधिक उपज देती है। सूखे इलाकों में खास तौर से तालाब की सिंचाई काफी लाभदायक सिद्ध हुई है। इसी प्रकार अब देश के कोने-कोने में तालाबों के महत्व को समझने वाले अनेकों स्वैच्छिक समूह प्रकाश में आये है जो इस ओर काफी चिन्तित हैं, और कुछ न कुछ कर रहे हैं। ये राजस्थान, महाराष्ट्र व कर्नाटक में अब पुनः तालाब निर्माण का कार्य कर रही है।

## छोटे तालाबों का प्रत्यक्ष अनुभव

कुल मिलाकर हमने गत वर्षो में छोटे-बड़े लगभग ग्यारह हजार से ऊपर तालाब जोहड़, छोटे बांध राजस्थान में बनायें या मरम्मत कराये हैं। इनमें कुल दस करोड़ रुपया लगा हैं, लेकिन इनके लाभ देखें जायें तो हमें स्वयं को आश्चर्य होता है। उदाहरण के

लिए, वर्ष १९८६ में गोपालपुरा गांव के सिंचाई के तथा पीने के पानी वाले कुएं सूख गये थे। गांव के जवान लोग मजदूरी के लिए दिल्ली तथा अहमदाबाद चले गये थे। जमीन में कुछ पैदा नहीं हो रहा था, तभी इस गांव में तालाब के निर्माण का कार्य जारी किया गया और सन १९८७ के जून तक गोपालपुरा गांव में तीन बड़े तालाब बनाये। गांव वाले इन्हें बांध कहते है तथा एक छोटा तालाब बनकर तैयार हो चुके थे। इनके निर्माण कार्य में दस हजार रुपये की कीमत का गेहूं दिया गया। जुलाई १९८७ में इस क्षेत्र के अन्दर कुल १३ सेंटीमीटर वर्षा हुई। यह सारी वर्षा एक साथ ही ४८ घंटे के अंदर हो चुकी थी। इनके पानी से जमीन "रिचार्ज" यानी पुन: सजल हो गई, और गांव के आस-पास के २० कुओं में जलस्तर ऊपर आ गया। बेकार-बंजड़ जमीन पर १०० एकड़ खेती होने लगी।

वर्षा का पानी जो तालाबों में इकठ्ठा हुआ था, वह अपने साथ जंगल व पहाडियों से पत्ते, गोबर आदि भी बहाकर ले आया था, जो तालाबों की तली में बैठ गया। बड़े तालाब खेतों की जमीन पर बने हुए थे। इसलिए नवम्बर तक पहुंचते-पहुंचते तालाबों का पानी तो नीचे की जमीन की सिंचाई करने के काम में ले लिया गया और तालाब के पेटे की जमीन में गेहूं की फसल बो दी। एक फसल में केवल इन तालाबों की जमीन से ही ३०० (तीन सौ क्विंटल अनाज पैदा हुआ जिसकी कीमत बाजार भाव से करीब पौन लाख होती है। इसके अलावा तालाब में पूरे वर्ष पानी भरा रहा। इसे पशुओं के पीने के पानी के लिए बनाया गया था। इस प्रकार गांव के पशुओं को पूरे वर्ष पीने का पानी सहज उपलब्ध होता रहा। गांव का पीने का पानी वाला कुआं जो सूख गया था वह अब पानी भरा रहता है। कुओं का जल स्तर अब ९० फीट नीचे से उठकर २० फीट तक पहुंच गया है।

तालाबों के चारो तरफ हरी घास उगने लगी है। पेड़ हरे-भरे होकर तेजी से बढ़ने लगे है। तालाबों का पानी जंगली पशुओं तथा पक्षियों को अपनी तरफ आकर्षित करता है, जिसमें एक उजड़े हुए गांव का वातावरण सुहावना बन गया है। पक्षियों द्वारा फसल को नुकसान पहुंचाने वाले कीडे खाये जाने तथा पक्षियों की बीट से जमीन के

पानी के उपयोग की व्यवस्था फिर से सामुदायिक भावना और परस्पर सहयोग का वातावरण बन रहा है। पीने का पानी लेने के लिए पहले दूर जाना पड़ता था, जिसमें गांव की महिलाओं की बहुत सी समय शक्ति नष्ट होती थी। यह परेशानी अब खत्म हुई है। इसी तरह हर वर्ष गांव से मजदूरी करने लोगों को बाहर जाना पड़ता था, पर अब इन्हें गांव में ही काफी काम मिलने लगा है। नीमी जैसे कई गांव जिनमें पहले मजदूरी करने जयपुर जाते थे। अब ये जयपुर के शेठों को रोजगार देने वाले बन गये है। शेठों के ट्रक इन गांवों की सब्जियां शहरों में ढोने का काम करते है। इस प्रकार इन तालाबों के कारण अनेक लाभ हुए हैं।

यह क्षेत्र पहाड़ की तलहटी में और ढालू होने के कारण तेज वर्षा के पानी जमीन को काटकर बहां ले जाता था। जमीन का उपजाउपन वर्षा के पानी के साथ बाहर चला जाता था, इसलिए जमीन में नमी की कमी रहती थी, तथा फसल का बीज ही क्या घास तक नहीं उगती थी। वहां वर्षा कम होती है, और जो होती है, वह भी एक साथ और तेज होती है, फिर पूरा साल सूखा पड़ता रहता है। इसलिए इस क्षेत्र में तालाब अत्यन्त आवश्यक एवं खास तौर से उपयोगी है। तालाबों से अब भूमि का कटाव भी रूक गया है।

इसी प्रकार किशोरी गांव में एक "चैकडैम" बना है, जिसे बड़ा तालाब कह सकते है। यह भी जुलाई १९८७ में पूरा तैयार हो चुका था। इसके निर्माण में कुल लागत पचास हजार रुपये) आई, जिसमें आधी लागत ग्राम के श्रमदान से जुटाई गई। इस तालाब के भराव क्षेत्र में ही २५० क्विंटल अनाज पैदा हुआ। यह तालाब एक ऐसी तेज धारा को रोकता है, जिसने गत वर्षो में एक सौ एकड़ से अधिक भूमि को बंजर (खेती के आयोग्य) बना दिया था। जमीन में बड़े-बड़े नाले व खड्डे हो गये थे। वह जमीन स्वत: ही समतल होने लगी है। अब वह खेती योग्य हो गई है। कहा जा सकता है कि इस तालाब ने पूरी एक सौ बीघा जमीन खेती के योग्य बना दी है। कुओं का जलस्तर ऊपर आ गया है। इस तालाब में रूकने वाला पानी जो पहले नीचे जाता जिस सैकड़ों बीघा भूमि को बिगाड़ता था, वह बिगाडा भी अब रूक गया है। तालाबों से एक लाख

की लागत से एक हैक्टयर भूमि पर सुक्षक खेती हो सकती है। बड़े बांध द्वारा सम्भव नहीं है। यह खर्च भी गरीबों को नहीं मिलता। बड़ी कम्पनियां ही इस धन को डकारती हैं। किसानी और सिंचाई का सारा पैसा किसानों का बजट बड़ी कम्पनियां खाती हैं।

## चम्बल का प्रत्यक्ष अनुभव

चम्बल के गांवों में जो साथी बन्दूक लेकर फिरते थे। अब इन्होंने बन्दूक छोड़कर फावड़े से तालाब बनाने शुरू किये, तो इनके काम से करौली जिले की सपोटरा तहसील के गांवों के जीवन में सुख समृद्धि शांति आ गई। डकैत कहलाने वाले भाई सज्जन-किसान और देवता बन गये। अब इनकी महेश्वरा नदी शुद्ध-सदानीरा बनकर बहने लगी। खिजुरा गांव बहुतों को दूध-अनाज देने वाला बना गया है। इन्होंने हजारों को अपने गांव में बुलाकर कुंभ किया। बेपानी से पानीदार बन गये। अब तक १०८५३ वर्ग किमीत्र क्षेत्रफल में बारह सौ गांवों ने अपने हाथों से ग्यारह हजार से ज्यादा तालाब बनाकर राजस्थान में छोटी-छोटी नदी अरवरी, सरसा, रूपारेल, भगाणी, जहाजवाली, साबी, सैरनी, महेश्वरा व महाराष्ट्र में महाकाली व अग्रणी नदियां पुनर्जीवित हो गई। अब भूजल का स्तर ऊपर आकर नदियों को सदानीरा बना रहा है। बढ़ते ताप और बिगड़ते मौसम के मिजाज को भी तालाबों की नमी हरियाली बठाकर ठीक करती है। वातावरण के कार्बन को पेड़ अपने पत्तों, तनों और जड़ों में जमाकर लेते है। अतः तालाब जैसा छोटा स्थानीय काम वैश्विक समस्या बिगड़ते मौसम के मिजाज और धधकते ब्रहामाण्ड को सन्तुलित करने का उपचार तालाब है।

## आर्थिक लाभ के साथ-साथ आनन्दानुभूति

हमने अब तक जो ग्यारह हजार तालाब बनाये है, उनके अनुभव पर से हम पूरे अधिकार के साथ कह सकते है कि किसी भी तालाब के निर्माण में जितनी रकम खर्च होती है, उसकी पूर्ति, यदि सामान्य वर्षा हो जाये, तो एक वर्ष में हो जाती है। हम आंकडो की भाषा नहीं जानते, लेकिन इस काम में लगे श्रम से अधिक आर्थिक लाभ के साथ-साथ गांव की एकता का सुखी आनन्दमय वातावरण तथा बे-सहारा पशु-

पक्षियों को तालाब पर किलोलें करते देखकर मन बाग-बाग हो जाता है। इस आनन्दानुभूति के कारण आगे से और हजारों से लाखों तालाबों के निर्माण की शक्ति हममें आ गई है। अमेरिका के साथी पैट्रिक मेकौली ने हमारे तालाबों का अध्ययन करके लिखा है। तालाब में हजार लीटर पानी पकड़ने में तीन रुपये खर्च हुआ है। बड़े बांधों में इस पानी को पकड़कर उपयोग कर्ता तक पहुंचाने मे तीन सौ से अधिक खर्च होता है। अत: तालाबों में पानी पकड़कर उपयोग करना ही सबसे सस्ता और स्थाई सनातन उपाय है।

**तालाब व्यवस्था आज के अभिजात वर्ग की आंख में किरकरी!**

इस भौतिक और भावनात्मक लाभ के साथ-साथ इस काम ने आज की शोषणकारी और विकृत व्यवस्था का नंगा चित्र भी सामने ला दिया है। दरअसल राजनेताओं को गांववासियों की बन रही शक्ति पता नहीं क्यों नहीं सुहाती है ? प्राषसनिक अधिकारियों तथा तकनीकी लोगों को तो गांव-वासियों की शक्ति और परम्परागत स्वावलम्बन की पद्धति अखरती ही रही है। जब ये तालाब बनने आरम्भ हुए थे, तो एक बार राजस्थान सरकार के सिंचाई विभाग के अधीक्षक अभियन्ता से इन्हें अवैध कहकर तोड़ने का नोटिस दिया था। जिलाधीश ने भी इस बात की पैरवी की थी। इन्हें तोड़ने के लिए राज्य-सचिवालय में काफी सरगर्मी रही, पर गांव वालों के डटे रहने के कारण फिर जांच हुई और छ: माह बाद विकास आयुक्त का पत्र आया कि यह अच्छा कार्य है, इसमें सरकार को सहयोग करना चाहिए। उपमुख्यमंत्री, सिंचाई ने कहा राजेन्द्र सिंह ने राजस्थान सरकार का पानी रोका है। यह हमारी जेज में रहेंगा। मुझे जेल तो नहीं भेज सके।

देखने और समझने में आया है कि जब सरकार को मजबूरी हो जाती है, तो जिस काम को पहले बुरा, अहितकर, यहां तक की कभी-कभी 'देशद्रोही' बतलाया गया हो वह भी उपयोगी बन जाता है। ठीक यही इस तालाब-प्रकरण में हुआ। जब मुख्यमंत्री को यह बात मालूम हुई कि तालाब लोगों ने मिलकर बनाये है और तालाब

तोड़े गये तो तालाब टूटने से पहले वहां के लोग मरने को तैयार हैं, तो ये 'अवैध' तालाब वैध होने के साथ-साथ बहुत अच्छे हो गये। इस अच्छे कार्य में सरकार का सहयोग प्राप्त करने की सलाह भी हमें साथ में मिली। संयुक्त राष्ट्रसंघ जिन जोहड़ों को नारू रोग का जनक मानकर जोहड़ों को पूरा करने की सलाह दे चूका था। उन्हें ही जोहड़ नाम से 'बेस्ट प्रकटिस' कहना शुरू किया है। सवाल यह उठता है, कि आज हर अच्छे रचनात्मक काम के लिए पहले संघर्ष क्यों करना पड़ता है। अच्छा करने हेतु हमेशा शिक्षण, रचना, संघठन और सत्याग्रह करना पड़ता है।

**क्या हम आशा करें?**

बड़े बांध और नहरों से होने वाली सिंचाई का खर्च चालीस हजार रुपये प्रति हैक्टेयर पहुंच गया है। इसके अलावा तवा, नर्मदा, भांखडा आदि से निकलने वाली नहरों का दुष्परिणाम भी लोगों ने देख लिया है। इसे समझकर जगह-जगह इन बांधों का विरोध भी हो रहा है। विरोध करने वाले छोटे बांध या सिंचाई के तालाबों की बात भी सुझा रहे हैं। आशा है जब हमारे योजनाकार ही इस बात को मान जायेंगे और तालाब बनाने को अच्छा काम कहेंगे, तथा जो पैसा अभी बड़े बांधों पर खर्च हो रहा है उससे बहुत कम खर्च में तालाबों के जरिए उतना ही काम करने की संस्तुति करेंगे। लेकिन वह दिन तभी आयेगा जबकि हम सरकार की कोई मजबूरी बनेंगे। अब हमें बड़े बांधों पर रोक लगाने के लिए सरकार की मजबूरी ही खोजनी पड़ेगी। तभी तालाबों को भी संरक्षण मिलेगा। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने बड़े बांधों का काम रोककर जलयुक्त शिवार शुरू किया है। लेकिन इसमें भी ठेकेदार पहुंचकर बिगाड़ कर रहे हैं। अन्यथा यह सर्वोत्तम योजना थी। अभी सरकार पुन: अच्छी कोशिश शुरू कर रही है। यहां की सरकार ने जल साक्षरता आरम्भ करके जलयुद्ध को शांति में बदलने का प्रयास है।

**तेन व्यक्तेन भुञ्जीथा:**

'यह सारी सृष्टि मेरे लिए बनी है, मैं जितना और जिस प्रकार चाहूं उसके उपयोग का मेरा अधिकार है' – यह गलत धारणा ही आज की कई आर्थिक समस्याओं की

जड़ में है। वास्तव में सृष्टि मनुष्य के लिए नहीं है, सृष्टि का अपना स्वतंत्र प्रयोजन है। मनुष्य उसका एक अंग है, अत: सृष्टि का आदर करके जीना है।

कुल मिलाकर सारी सृष्टि एक है, उसके विभिन्न अंश परस्पर संबंधित ही नहीं परस्पर अवलम्बित है। सृष्टि 'मेरे लिये' नहीं है। वास्तव में वह 'किसी के लिये' नहीं है। सब मिलकर सबके लिए है। इसलिए मनुष्य को प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए जितना उसकी जीवन-धारणा के लिए आवश्यक हो। और 'जो लिया जाये वह भी सेवा करके, त्याग करके, बदले में अपनी ओर से कुछ न कुछ करके अर्थात यज्ञ करके भारत में प्रद्धति को यज्ञ द्वारा देकर ही लेने की परम्परा थी। यह उपनिषद में निम्नवत कहा गया है।

ईशावास्यमिद्म सर्वम् यत्किंचित जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञजीथा: मा गृध: कस्य स्वीद्धनम्।।

जितना हम अपने जीवन में जल उपयोग करे उतना ही हम अपने श्रम से पसीना बहाकर, तालाब बनाकर, प्रकृति के कार्य में सहयोग देवें। जितना लें उतना ही, वैसा ही प्रकृति को तालाब बनाकर हम लौटाते है। इसलिए तालाबों की परंपरा समयसिद्ध और आज भी खरी है। जहां समाज लगता है। तालाब बनाकर अपने को पानीदार बना लेता है। तालाब तोड़ने वालों का सामना करके भी अपने तालाब बचा लेता है।

हमारे तालाब दुनिया के सबसे बड़े बांध है। आज से बने बड़े बांधों से हजारो-लाखों बेघर होते है। हजारों तालाब बेघरों को घर-बार, पेड़-पौधें, रोटी-पानी देकर आबाद बनाते है। बाढ-सुखाड़ रोकते है। मौसम का मिजाज सुधारते है। ब्रहामण्ड का ताप सन्तुलित बनाते है।

भारत का किसान जब तक खेती को संस्कृति मानकर जल व मिट्टी का संरक्षण करता रहा तभी तक उसकी स्थायी यह समृद्धि बिना धरती को बिगाड़े स्थायी समृद्धि के रास्ते पर आगे बढ़ता रहा था। तभी तक भारत का किसान दुनिया को सिखाने वाला

प्राकृतिक उत्पादन कर्ता था। आज किसान को अपने उस मूल ज्ञान की तरफ पुनः देखने व दिशा में काम करने की जरूरत है।

किसानी का सम्मान नहीं है। इसलिए किसानी, पानी जवानी सभी अपनी जगह छोड़कर पलायन कर रहे है। लाचारी, बेकारी, बिमारी का पलायन रोकने वाली जल साक्षरता और प्राकृतिक प्रेम और सम्मान को बढ़ानेवाली दृष्टि और दर्शन की जरूरत है। यह हमें विश्वशांति हेतु करना है। यही रास्ता जलवायु परिवर्तन अनुकूलन कहलाता है।

राजस्थान के जल संरक्षण व वर्षा-चक्र को फसल-चक्र के साथ जोड़ दिया। गांवों से उजड़े लोग पुनः आकर खेती करने लगे। हरियाली बढ़ी, वर्षा-चक्र बदला, कम जल खपत वाली खेती बढ़ी। कम जल में अधिक पैदा का चलन बढ़ा। आय बढ़ी। समझ भी बढ़ी। प्रकृति प्रेम विश्वास बढ़ने से शांति कायम हुई। यही भारतीयता है। यह सनातन और स्थाई समृद्धि है। अब हमें इसी रास्ते पर चलना है।

**जलवायु परिवर्तन हेतु शिक्षा का भविष्य एवं चुनौतियां :**

जलाधिकार सुरक्षित करने हेतु विज्ञान एवं शिक्षा की भूमिका पर वटिकन, रोम में पोप के सामने बोलते हुऐ मैंने कहा "आज की शिक्षा मानव को लालची बनाती है"। तकनीकि एवं इंजीनियरिंग में प्रकृति की अधिकतम शोषण विधियां पढ़ाई एवं सिखाई जाती हैं। विज्ञान की मद्द से ही इंजीनियरिंग व तकनीक आज प्राकृतिक शोषण करने में जुटी है। "प्रबंधन की शिक्षा मानवीय एवं प्राकृतिक दोनों को ही नियंत्रण करना प्रबंधन पढ़ाती है।" आज सभी कुछ नियंत्रण करने का दौर है। पहले नियंत्रण करो फिर उसका भोग-उपयोग जो भी कुछ करना है, करो। प्रबंधन प्रशिक्षण का अर्थ है। नियंत्रण के गुण सीखना। नियंत्रण से ही कुछ ही लोग पुरी दुनिया के नियंत्रक बनते है। आज सभी लोकतांत्रिक सरकारें ऐसा ही करने में जुटी हैं। औद्योगिक घराने ही लोकतांत्रिक सरकारों के लिए प्रबंधन कर रहे हैं। इन्हें चला रहे हैं। आज का लोकतंत्र ठेकेदारों, औद्योगिक घरानों के द्वारा संचालित है। सामाजिक विज्ञान की पढ़ाई भी समाज को श्रम मुक्त जीवन जीने की शिक्षा दे रहा है। श्रमनिष्ठ समाज को पिछड़ा,

दलित, महादलित कहकर उसका अपमान ही करता है। या फिर कमजोर की कमान से भिड़ा देता है। कमजोर कमान से लड़कर हार ही जाता है। हार कर टूट जाता है। इस वास्ते वर्तमान शिक्षा उसके अधिकार सुरक्षित नहीं कर पाती है। बस लड़कर अधिकार लेकर कुत्ते की तरह लालची ही बना रहा है।

"९० वर्ष पूर्व से आज की शिक्षा को मानवाधिकार दिलाने वाली शिक्षा कहा गया था।" शिक्षित ही अपने अधिकार हेतु लड़ता और जीतता है। वर्तमान में यह सर्वसिद्ध नही है। कहीं-कहीं उक्त हुआ है। वह सभी कुछ शिक्षा से नही मिला। परिस्थिति बस मिल गई हैं। परिस्थिति वर्तमान शिक्षा ने नही पैदा की है, बल्कि जन दबाव या सामुदायिक जिम्मेदारी ने प्राप्त किया है। जैसे अरवरी नदी की संसद ने अपने संरक्षित जल का शेषण कोका कोला-पेप्सी विवन्डी स्वैज आदि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को नही करने दिया। इस क्षेत्र में ऐसा इसलिए संभव हुआ क्योंकि यहां मैकाले की शिक्षा अधिक नही थी। इनका अपना मूल परंपरागत शिक्षण यहाँ बचा था। इसीलिए इन्हें अपने दायित्व और अधिकार का अहसास हुआ। उसे समझकर वर्षा जल संरक्षण किया फिर अनुशासित होकर उसका उपयोग करने की दक्षता बढ़ाई। इसलिए इनकी नदी में वर्षाजल शुद्ध, सदानीर बनकर बहने लगे। फिर उसकी मछली और नदी का जीनपूल जैवविविधता बचाने हेतु जल बचाओ सत्यागृह शुरु हुआ। सरकारी ठेके रद्द हुऐ। इस नदी पर समुदायों का अपना जल अधिकार सुनिश्चत हुआ। समुदाय अपना मानवीय एवं प्राकृतिक जलाधिकार प्राप्त कर सकें। यह उनके मूल शिक्षण व रचनात्मक संघर्ष से ही संभव हो सका है।

मानवीय अधिकार दिलाने हेतु विज्ञान एवं शिक्षा की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है, लेकिन बहुशिक्षा और विज्ञान लोकानुकूल व प्रकृति अनुकूल समतामूलक होनी चाहिए। समाज को जब भी सम्मान जनक शिक्षा एवं विज्ञान का सरल सहज सम्भव सहारा मिलता है, तो समाज स्वयं खड़ा होकर लड़ता है। अपने अधिकार प्राप्त कर लेता है। शिक्षा और विज्ञान की जटिलताओं में वह खो जाता है। अपनी हकदारी और जिम्मेदारी को भूल जाता है। इनके अंतर की पहिचान भी नही कर पाता है।

वर्तमान शिक्षा पद्धति की अपनी सिमाएं और मर्यादाएं व कमियां है। यह लाभ पाने का विचार देती एवं सिखाती है। शुभ का विचार भुलाती है। लाभ केवल निजी काम करने हेतु प्रेरित करता है। शुभ साझे कामों की पुण्य प्रेरणा बनता है। अत: नीजिता की ओर ले जाने वाली शिक्षा जल मानवाधिकार सुनिश्चित कराने का कार्य नही कर सकती है। अत: जल की जिम्मेदारी और हकदारी सिखाने वाली शिक्षा ही मानवीय जलाधिकार सुनिशचित कराने में सफलता दिला सकती है। जल का निजीकरण आधुनिक शिक्षा का ही परिणाम है।

**जलसाक्षरता – महाराष्ट्र सरकार की पहल**

महाराष्ट्र सरकार ने जलाधिकार पाने वाली मानवाधिकार की जल-साक्षरता का एक केन्द्र स्थापित किया है। यह केन्द्र जल के लिए मानवीय जिम्मेदारी पहले सिखायेगी बाद में मानवाधिकार का अहसास करायेगा। ऐसे उद्देश्यपूर्ण पूरी दुनिया में एक 'जल साक्षरता' अभियान चलाने हेतु अप्रैल २०१४ को साउथ कोरिया के ज्ञानजू शहर में आयोजित विश्वजल मंच २०१४'' में एक विश्वजल शांति यात्रा आरम्भ की है। अभी तक यह यात्रा ३७ देशों में जा चुकी है। इस यात्रा का उद्देश्य स्पष्ठ है। बेपानी, बिगड़ा पानी के कारण होते लाचार, बेकार, व बीमार लोगों का पलायन रुके। मजबूरी में होने वाले जल-पलायन पर रोक लगाने हेतु सामुदायिक विकेन्द्रित जल प्रबंधन की शुरुआत हों।

जहां भी दुनिया में सामुदायिक विकेन्द्रित जल संरक्षण हुआ है। वहां-वहां वापसी पुनर्वास हुआ है। राजस्थान इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। अलवर जिले की थानागाजी तहसील के गोपालपुरा गांव से शुरू हुआ यह कार्य १२०० गांवों में हुआ है। इन सभी में वापसी पुनर्वास हुआ है। वापसी पुनर्वास ही विश्वजल शांति कायम कर सकता है। इस हेतु समाज को आभास कराने वाली शिक्षा से, चेतना से संगठन बनाकर सामुदायिक जल संरक्षण के कार्य कराना जरूरी है। जब समाज अपनी जिम्मेदारी जल संरक्षण एवं अनुशासित उपयोग में समझेगा, तभी तो अपने अधिकार को पाने का अहसास और आभास बना सकेगा।

आज समाज को जल संरक्षण प्रबंधन हेतु सामुदायिक अहसास कराना है। समाज संगठित बनकर अपने जलाधिकार प्राप्त करने का आभास प्राप्त कर सकेगा। यह शिक्षा तों श्रमनिष्ठ है। समाज को प्रकृति का प्यार-सम्मान सिखाने वाली है। जितना प्रकृति से लिया है उतना ही प्रकृति को वापस भुगतान करना सिखेगा। वही समाज सफल और सिद्ध होगा, जिसके जीवन में प्रकृति का प्यार, सम्मान का व्यवहार और संस्कार होगा। यही संस्कार और व्यवहार सामाजिक और पर्यावरणीय अन्याय का प्रतिकार करने हेतु तैयार करेगा। मानव जलाधिकार पर्यावरणीय सामाजिक अन्याय के विरूध लड़ाई है। इसी लड़ाई को हमें लड़कर जीतना जरूरी है।

यही शिक्षा और प्रक्रिया जल मानवाधिकार पाने वाली है। ऐसी शिक्षा कक्षा (कमरे) में बैठकर पढ़ाने वाले विश्वविद्यालयों में नही दी जा सकती है। इसके लिए चलता-फिरता विश्वविद्यालय चाहिए। जो बाढ़-सुखाड़ क्षेत्र आदि जल उपयोग करने वाले समाज तथा जल कार्य के कारण प्यास से मरने वाले समाज के बीच समाधान हेतु पहुँचना होगा।

मैं गत तीन वर्षो से यही कर रहा हूँ। कोसी में आई बाढ़ के समय मैं कोसी में ही था। सतना, रीवा, मुम्बई और चैन्नई की बाढ़ के समय मोके पर जाकर काम किया। बाढ़ सहवरण की शिक्षा देकर भावी बाढ़ मुक्ति सिखाई। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के बुन्देलखण्ड, राजस्थान, कर्नाटक, महाराष्ट्र के दुष्काल में उन्हीं क्षेत्रों में जाकर वहां के समाज के साथ दुष्काल मुक्ति हेतु प्रत्यक्ष काम किया। वर्षाजल व मिट्टी संरक्षण सिखाया। स्वयं भी काम किया। बहुत से युवा और महिलाओं को ऐसा काम करना सिखाया।

बेमौसम वर्षा, बादल फटना, धरती को बुखार और मौसम के मिजाज बिगड़ने से होता है। यही जल शिक्षण सभी को कराने की है। यह बात मुझे अनपढ़ किसानों ने सिखाई है। जब वायु में कार्बन की अधिकता होती है, तो तापक्रम बढ़ता है। जब वायु मिट्टी में जमा होती है या हरियाली में रहती है तब वायुमण्डल में प्राणवायु O2 बढ़

जाती है, तो वातावरण में तापक्रम संतुलित हो जाता है। यही प्रक्रिया जलवायु परिवर्तन में अनुकूलन निर्माण करती है। अब इसे ही समाज को सिखाना होगा। जब समाज यह सब जानता है, तभी वह साझे भविष्य सुधार में संक्रिय होता है। हमारे क्षेत्र के किसानों ने कम पानी खर्च करके कौन फसले उगा सकते हैं। वही आरम्भ किया क्योंकि पहले उनमें समझ पैदा हुई फिर काम करने की ललक जागी हैं। समाज को स्वयं की जिम्मेदारी का अहसास ही हकदारी दिलाता है। आज जिम्मेदारी हकदारी का संबंध जोड़ने वाला शिक्षण देने की अत्यंत आवश्यकता है।

सूखते झरने, मरती नदियां, गन्दगी से बीमार गंगा को पुनः स्वास्थ्य करने हेतु, नारे नही, अच्छा वैद्य, चिकित्सक चाहिए। अच्छा सद्गुणी, ईमानदार कर्तव्यपूर्ण बेटा ही मां की चिकित्सा कर कराता है। झूँठ बोलकर दिखावा करने वाला बेटा कभी मां की सेवा भी नही करता है, और चिकित्सा भी नही करता है। इसीलिए हम नदियों को माँ कहने वाले बेटे तभी तक गंगा को मां कहते हैं जब वह वोट दिलाती है। जब वह वोट नही दिलाती है, तो हमें उसका स्मरण भी नही आता है।

लोकसभा चुनाव २०१४ में गंगा माँ ने वोट दिलाये थे। उनकी सेवा नहीं हुई। उन्हें स्वास्थ्य बनाने का काम भी नहीं किया, तो गंगा का नाम लेने से वोट करने वाले थे। इसलिए उसका नाम ही उ.प्र. चुनाव २०१७ में गंगा को स्मरण ही नही किया गया। गंगा मुद्दा ही नही बना। इन राजनैतिक बातों का शिक्षण भी जल साक्षरता में जरूरी है।

जल-साक्षरता जल का सामाजिक, आर्थिक व पर्यावरणीय पहलुओं को समझाना ही है। कम जल खर्च करके अधिक पैदावार कैसे बढाये। फसलचक्र और वर्षाचक्र का क्या संबंध है? नदियों के प्रदूषण, भू-जल शोषण, जल पर अतिक्रमण से हमारी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व पर्यावरणीय हानि है। इससे कैसे बचें। हम जल संरचनाओं को अतिक्रमण मुक्त कराने हेतु क्या करें? भू-जल शोषण कैसे रोके? ये मूल सवाल आज पूरी दुनिया के सामने है।

मध्य एशिया और अफ्रिका उक्त तीनों सवालों के कारण बेपानी बनकर उजड़ रहा है। इन्हें पुनर्वास जल का सामुदायिक विकेन्द्रित, प्रबंधन ही कर सकता है। अत: इस दिशा में दुनिया को आज आगे बढ़ने की जरूरत है। विकास के कारण जन्मे अतिक्रमण, प्रदूषण शोषण की चुनौतियां हमारे सामने हैं। इनसे मुक्ति की हमें शिक्षा चाहिए। यह शिक्षा जल साक्षरता आरम्भ होकर ही दुनिया में जलवायु परिवर्तन की चुनैतियों को साकार करके उसका मिटिगेशन और एडेपटेशन कर सकती है।

जलवायु परिवर्तन से बाढ़-सुखाड़ जैसे अनेक संकटों को स्वीकार करके जल साक्षरता से जलवायु परिवर्तन मिटिगेशन और ऐडपटेशन शिक्षण व्यवहार, काम संघर्ष और सत्यागृह करने की आवश्यकता है। इस दिशा में दुनिया भर की बहुत सी संस्थाएं और समुदाय संक्रिय है। अधिकारोन्मुखी संघर्षशील संस्थाएं है। फेथ में लगी चर्च फेडरेशन है। सभी अलग-अलग टूकड़ों-टूकड़ा में काम करने वाले दुनियाभर के विश्वविद्यालय है। सभी को मिलकर समग्रता से बदलाव हेतु काम शुरू करना चाहिए। जैसे भारत ने 'जल-जन जोड़ो अभियान' जन आन्दोलन का राष्ट्रीय समन्वय एकता परिषद जैसे बहुत से लोग मिलकर काम कर रहे हैं। इन्हें एक साथ आकर सामाजिक व पर्यावरणीय न्याय की लड़ाई जलवायु परिवर्तन के दुष्यपरिणाम से मुक्ति की लड़ाई लड़नी जरूरी है। इसी का शिक्षण आज की सबसे पहली जरूरत है।

पिछले तीन वर्षो में मैंने दुनियाभर में देखा है, कि पर्यावरणीय अन्याय बढ़ रहा है। परिणाम स्वरूप एशिया से पलायन होकर यूरोप के कुछ देश जर्मनी, स्वीडन, फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैण्ड, इटली, यू.के. आदि देशों में एवं टर्की के शिखरों मे शरणार्थी का जीवन जी रहे हैं। यह चलन बहुत तेजी से बढ़ रहा है। इसे नही रोका गया तो तीसरा विश्वयुद्ध होगा। इससे दुनिया को बचाना अब असम्भव तो नही है, लेकिन कठिन जरूर है। दुनियाभर की सरकारे और संगठनों को इस दिशा में लगना चाहिए। मराठवाड़ा, बुन्देलखण्ड, पूर्वांचल, नेपाल, पश्चिम बंगाल के छोटे-छोटे कामों को मैं इसी दृष्टि से देखता हूँ। ये काम पिछड़ों को आगे लायेंगे। अकाल और बाढ़ से लड़ना सिखायेंगे। यही काम जलवायु परिवर्तन मुक्ति और अनुकूलन का भी काम है। इन

कामों के प्रत्यक्ष प्रभाव देर से दिखाई देते हैं। केवल भौतिक और आर्थिक प्रभाव तो पहली वर्षा के बाद ही दिखने लगते हैं, लेकिन पर्यावरणीय प्रभाव तो दो–तीन वर्षों में दिखाई देने लगते है।

**तीसरे विश्वयुद्ध का समाधान : जल–साक्षरता है।**

केवल मध्य एशिया और अफ्रीका में ही जल संकट है, यह सत्य नहीं है, जल संकट पूरी दुनिया में है। सभी देशों में जल पर अतिक्रमण, प्रदूषण और शोषण है; लेकिन मध्य एशिया और अफ्रीका में तो लोग बेपानी होकर उजड़ कर यूरोप तथा दुनिया के दूसरे देशों में बसते जा रहे हैं।

लंचार, बेकार और बीमार इंसान जहां भी जाता है वहां उसे अपमान ही झेलना पड़ता है। यह अपमान तनाव से लड़ाई शुरू कराता है। लड़ाई से बड़ी मार–पीट–लूट आरम्भ हो जाती है। 'मरता क्या नहीं करता' जब वह मरने–मारने को तैयार हो जाता है, तब लूट रोकने में सरकार भी अफसल हो जाती है। जैसे–सीरिया में हुआ।

सीरिया की गंगा, इफरिट्रस का प्रवाह अर्तातुर्क ने टर्की में बड़े बांध बनाकर रोक दिया। सीरिया खेती में सबसे पुराना देश है। यहां का किसान बेपानी हो गया। खेती, उद्योग बंद होने लगे। लोग लाचार–बेकार–बीमार होकर देश छोड़ने को मजबूर हो गये।

टर्की के दलालों ने अपने देश के रास्ते इन्हें जर्मनी, फ्रांस, स्वीड्न, बैल्जियम, नीदरलैण्ड और यू.के. आदि देशों में पहुंचाना आरम्भ किया। सीरिया खाली होने लगा। बगदादियों ने आकर इस पर कैंजा कर लिया। ऐसी ही कहानी फिलिस्तीन, जॉर्डन, इजराइल, सूडान और जिम्बाब्वे आदि देशों की भी है। कीनिया, इथोपिया, सोमालिया, बोत्सवाना आदि देशों के हाल भी वैसे ही बन रहे हैं।

भारत अभी तक बचा हुआ था, लेकिन आज इस देश में पचास हजार करोड़ रुपये का जल बाजार खड़ा हो गया है। पहले तो उद्योगों ने ही जल प्रदूषण करके जल

को पीने के योग्य नहीं छोड़ा, अब लोग प्रदूषित जल पीकर बीमार नहीं होंगे तो क्या होगा? 'मरता क्या नहीं करता' वे खरीद कर पानी पीने लगे, लेकिन सभी तो जल खरीद कर पी नहीं सकते है; इसीलिए जल पर झपटमार शुरू है।

यहां के बड़े उद्योगपतियों ने समुद्र तक पर कैंजा कर लिया है। नदियां खरीद लीं हैं। सामाजिक, धार्मिक सत्ता-शासन से साठगांठ करके महानदी जैसी नदी जल पर भी टर्की की तर्ज पर ही बैराज बना दिये हैं। पूरी नदी पर छः उद्योगपतियों ने कैंजा कर लिया है। छत्तीसगढ़ सरकार इनको पूर्ण सहयोग कर रही है, वह न्यायिक प्रक्रिया में भी अड़चनें पैदा कर रही है। इस प्रकार 'महानदी' नदी का विवाद बढ़ता जा रहा है।

गरीबों की जल जरूरत के विषय में किसी को चिंता नहीं है। उद्योगपतियों की जरूरत की ज्यादा चिंता है। सभी उद्योगपति पीने वाले पानी से उद्योग चला रहे हैं; यह जघन्य अपराध है। उद्योग और बाजारू खेती तो परिशोधित जल से भी चला सकते हैं, लेकिन वे ऐसा इसलिए नहीं करते, क्योंकि सरकार उनसे पूछती ही नहीं है। पीने के पानी को प्राथमिकता सरकारी नीति में केवल लिखकर दिखाने के लिये है; उपयोग और व्यवहार दूसरा है। आज सरकार को अपनी कथनी और करनी के भेद की चिंता नहीं है।

जलप्रवाह, सिंचन व पेयजल आदि के विषय में किसी भी प्रकार की नीति एवं योजनाओं का ख्याल नहीं है। अभी नदियों पर संकट है। सारी दुनिया के लोग इकट्ठा होकर इन्हें बचाने की बात करें, रास्तें खोजें और मिलकर काम शुरू करें। हमें इस संकट की घड़ी में यह देखना हैं कि नदियों के जल को आखिर कौन अतिक्रमण कर के इन्हें प्रदूषित बना रहा है? प्रदूषण करने वालों का स्वार्थ क्या है?

हम अभी प्रदूषकों, शोषकों और अतिक्रमणकारियों को कैसे रोक सकते हैं? फसलों में गन्ना, धान व चावल आदि मानव के पीने वाले पानी को हवा में उड़ा रहे हैं। उड़ा हुआ यह पानी जहां वर्षा की आवश्यकता है, वहां मदद करेगा; इस बात की कोई गारन्टी नहीं है। इसलिए वर्षा-चक्र और फसल-चक्र का जुड़ाव जरूरी है। यह काम

तो सरकार के जल सम्पदा और जल संधारण विभागों ने सामुदायिक नेतृत्व के साथ मिलकर शुरू किया है। इस कार्य को दुनिया की सरकारों और समाज को भी मिलकर इसी प्रकार करना चाहिए। जब तक राज और समाज इस संकट का मिलकर समाधान नहीं खोजेगा, तब तक दुनिया का तीसरा विश्वयुद्ध नहीं रुकेगा।

तीसरे विश्वयुद्ध को रोकने में महात्मा गांधी (बापू) से ही सीख मिलती है। बापू ने दूसरे विश्वयुद्ध में भी शांति का संदेश दिया था। उसी काम का उनका संदेश है:- 'प्रकृति सबकी जरूरत पूरी कर सकती है, लेकिन किसी एक इंसान का भी लालच पूर नहीं कर सकती।' उन्होंने भारत को शांतिमय तरीके से लाखों नागरिकों को जोड़कर देश की आजादी में बहुत से शहीद होने वाले युवाओं को बलिदान के लिए तैयार किया था। उन्होंने अपनी साधना-सिद्धी से देश को जाग्रत करके खड़ा कर दिया था। इस प्रकार देश की जनता ने शांतिमय तरीके से आजादी हासिल कर ली थी।

भारतवर्ष में सत्य-अहिंसा का सम्मान था। इसीलिए ''सत्यमेव जयते'' हो गया था। अहिंसक जीवन पद्धति से यहां के लोग अपने भगवान् को प्यार, विश्वास, आस्था भाक्तिभाव से देखते, जीते और सहेज कर रखते थे। भगवान् का अर्थ, (भ-भूमि, ग-गगन, व-वायू, आ-अग्नि और न-नीर)। यही पंचमहाभूत भगवान् थे। वैदिक ग्रंथों व वेदों में किसी अन्य देवता के नाम 'भगवान' के रूप में उल्लेख नहीं है।

वेदों के बाद भी भगवान् उसी को कहते थे, जो पंचमहाभूतों से निर्मित जंगल, जंगलवासी, जंगली जीवों को प्यार और सम्मान करता रहा है। जैसे 'कृष्ण' बाढ़ से बचाव कराने वाला, कंस की लूट से बचाने के लिए संघर्षरत कृष्ण तो पशुपालकों का नेता था। वह यमुना नदी को प्रदूषण मुक्त कराने के लिए 'कालिया नाग' व प्रदूषणकारी उद्योगों से उद्योगपतियों से लड़ता था। उस काल में अन्याय के विरूद्ध अत्याचारियों से संघर्षशील राम-कृष्ण जैसे साधारण इंसानों को ही भगवान का सम्मान मिलता था।

आज उसका उल्टा अर्थात भौतिक दिखावटी व धरती को बिगाड़ने समाज को धोखा देने वालों को सम्मान दिया जा रहा है। आज के रोल मॉडल नदियों, समुद्र को प्रदूषित करने वाले लक्ष्मी पूजक ही पूजे जा रहे हैं। सम्मानित रहे लोग ही बहुत कुछ बिगाड़ रहे हैं। उन्हें हम विकास पुरुष कहकर सम्मान दे रहे हैं, जबकि इनके कर्मो से हमारी धरती कुरूप बन रही है। इन्होंने धरती को बुखार चढ़ा दिया है। मौसम का मिजाज बिगाड़ कर जलवायु परिवर्तन कर दिया है। परिणाम स्वरूप बेमौसम वर्षा होने लगी है। बेमौसम वर्षा के अनुसार फसलें नहीं होती तो फसलों को जल की अधिक जरूरत होती है। उसकी पूर्ति हेतु हम जल शोषण करके धरती का पेट खाली कर रहे हैं। इसलिए जब जरूरत पूरी करने हेतु मिट्टी को नमी नहीं मिलती, तो फसलें सूख जाती हैं। सरकारें अकाल घोषित कर देती हैं। जब कभी बेमौसम वर्षा होती है तो वर्षाजल के साथ मिट्टी कटाव होकर नदी तल में जीम मिट्टी नदी का तल ऊपर उठती है। जब फिर वर्षा होती तो बाढ़ आ जाती है।

कुरूप-शोषित धरती ही बाढ़-सुखाड़ का कारण है। इसे हरी-भरी बनाने वाले जंगल अब बहुत तेजी से घट रहे हैं। सूरज समुद्र के जल का वाष्पीकरण करके बादल (नीली गर्मी) बनाता है। हवाएं इन्हें लेकर हरे जंगलों की (हरी गर्मी) तरफ आकर्षित करती हैं। जंगलों-फसलों की हरियाली बादलों को अपने ऊपर बरसाती हैं।

यह नीली+हरीगर्मी मिलकर बरस कर मिट्टी में मिलकर 'पीली गर्मी' में बदलने लगती है। बादल से निकला जल धरती पर गिरने से पहले 'इंद्रजल' कहलाता है और धरती पर गिरने के बाद मिट्टी से मिलते ही वह वरुण देवता (उत्पादक तंत्व) कहलाता है। यह जल मिट्टी से मिलकर पुनः हरियाली को जन्म देता है। यही हमारे लिए अन्न, पक्षियों के लिए पत्ते तथा सभी जैव विविधता को जैवाधार देता है। यही तो जीवन की शुरूआत है। इसे अब दुनिया भूल गई है। यही भारतीय अध्यात्म का मूल आधार है। अलौकिक शक्ति लौकिक ही होती है, लेकिन जब हम उसे समझते नही तो परलौकिक कह कर आगे बढ़ने का रास्ता खौजते हैं। हमें अपने अध्यात्म को अपनी आत्मा में जब भी खौजते हैं। तो वह स्पष्टता से हमें बताती, मैं पंचमहाभूतों के योग से

निर्मित छटा नारायण हूँ। अर्थात हमारी जीवात्मा जो पंचमहाभूतों का 'योग' है वही है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आज हमने अपनी आत्मा को बुद्धि के अधीन कर दी बुद्धि व्यापार है। यह 'लाभ–लालच की प्रेरणा से ही प्रेरित होती है। जब की आत्मा सबकसाझे भविष्य–वर्तमान की कामना होती है। इसी कामना को हम शुभ कहते है।

आत्मा शुभ की चाहत रखती है और बुद्धि लाभ की कामना करती है। शुभ–लाभ ही दुनिया है। शुभ प्राद्भतिक प्रेरणा और लाभ व्यापार प्रेरणा बनाता है। इसे हम समझें। २१वीं शदी में दोनों को समझना है। इनके बीच अच्छा पुल बनाना ही जल साक्षरता है। पंचमहाभतों का विलय करने वाला जल है।

ब्रह्माण्ड के कुल ११८ तत्वों में से ९० तत्वों को अपने में मिलाने वाला जल सबको अपने में घोलता है। यह अकेला महातत्व दो तिहाई दुनिया को मिलाकर रखता है। केवल २८ तत्त्व हैं, जो अकेले जल में घुलते नहीं है, लेकिन अन्य पंचमहाभूतों की उपस्थिति में उनके लिए या उन्हें अपने लिए उपयोगी बनाकर दुनिया को जन्म देकर चलाने वाला तो 'जल' ही है। इसलिए इसकी साक्षरता हमारे भारतीय जल नायकों के लिए अतिआवश्यक है।

हम दुनिया के गुरु तभी तक थे, जब तक अपने जल को भगवान समझते थे। हमारे शरीर का आंखों का तथा हृदय का जल, विश्लेषण करने पर अलग–अलग हो सकता है; लेकिन जल तो एक ही है। जल हमारा जीवन, जीविका और ज़मीर है। इसकी इसी रूप में साक्षरता की आवश्यकता है। जब तक भारत जल साक्षर नहीं होगा, तब तक दुनिया में विश्व–शांति कायम करने में सफल नहीं होगा।

दुनिया की शांति ही भारत की शांति है। दुनिया में आज जो अशांति है, उसका दुष्प्रभाव भारत पर भी है। वर्तमान अशांति में ही हमारे विकास का लालच बढ़ रहा है। यह हमारी शांति व समृद्धि को स्थायी या सनातन नहीं रहने देता और सनातन नहीं रहने देगा। सनातनता तो शांतिमय स्वरूप में ही जन्म लेती है; वहीं सत्य और अहिंसा पलते

और पोषित होते हैं। हमारे विविध काल-चक्र की सत्य-अहिंसा का मूल एक समान ही है। शब्दों और व्यवहार के अंतर से इनकी अनुभूति पर कोई फर्क नहीं पड़ता है।

जल का सत्य समझाने वाली साक्षरता और व्यवहार को संस्कार में लाने वाली अहिंसा ही हमारी जल साक्षरता बननी चाहिए। जब हम जल ही जीवन है, यह मानने लगते हैं; तभी से व्यवहार बदल जाते हैं। जीवन तो सबका एक समान ही पंचमहाभूतों से निर्मित है; जब इसको उपयोग में लाते हैं तब हम बड़े-छोटे या गरीब-अमीर बनते हैं। जब हम बड़े या अमीर बनते हैं तभी जीने-पीने के पानी का शोषण-प्रदूषण व अतिक्रमण करने लगते हैं। हम इन तीनों को जब अपने व्यवहार व संस्कार में लेकर आते हैं, उस समय जल जीवन का सत्य भूल जाते हैं। उस वक्त हमारी बुद्धि प्रबल बन जाती है। बुद्धि के अधीन बनकर केवल लाभ के कल्पनामय सपने बुनकर उसी दिशा में काम करने में जुट जाते हैं। यही सपने और कल्पनाएं चंद लोगों को पानीदार और बहुतों को बेपानी बनाती हैं। लोगों को बेपानी बनाना ही हिंसा है।

पूरी दुनिया में बड़े उद्योग, शक्तिशाली राजा या सरकारें आज यही करने में जुटी हैं मध्य एशिया और अफ्रीका में अपेक्षाकृत ज्यादा जल की हिंसा है। मराठवाड़ा में गन्ना उत्पादन तथा हरियाणा व पंजाब में चावल का उत्पादन भी जल हिंसा ही है। उद्योगपति तो आज सभी जलहिंसा कर रहे हैं। जल हिंसा को रोकने का काम तो केवल और केवल जल साक्षरता ही कर सकती है।

बेपानी, गरीब की आंखों में तो अमीर के लिए भी जल होता है; लेकिन अमीर उद्योगपति के हृदय और आंखों का पानी सूख गया है। बेपानी, लाचार, बेकार, व बीमार होकर मरते गरीब को देखकर भी उसका हृदय नहीं पिघलता। उसकी आंखों में पानी नहीं आता। जब उद्योगपति की आंखों में पानी आयेगा, तभी उसे अहसास होगा कि गरीब के हिस्से के पानी से ही उसका उद्योग चल रहा है। सरकार ही उस पानी का उपयोग करने की अनुमति दे रही है। सरकार उस पानी को बनाती नहीं है; उसे केवल कस्टोडियन (ट्रस्टी-विश्वस्त) बनाया है। विश्वस्त ट्रस्टी मालिक नहीं होता, वह

केवल प्रबंधक और उपयोग कर्ता होता है। वह दूसरे की हकदारी समाप्त नहीं कर सकता। जल की हकदारी सभी की समान है, लेकिन आज इसमें असमानता पैदा कर दी गई है। यही बात जल साक्षरता द्वारा समझाने की जरूरत है।

महाराष्ट्र सरकार ने हकदारी और जिम्मेदारी की बराबरी करने हेतु जलयुक्त शिवार और जल साक्षरता में कुछ अवसर सृजित किये हैं। यह दुनिया को सिखाने का अच्छा अवसर बन सकता है। जब तक यह कार्य दलगत राजनीति का शिकार नहीं बनता, तब तक ठीक दिशा में आगे बढ़ेगा। सभी राजनैतिक दल इस काम को २१वीं सदी का सबसे जरूरी काम मानकर, इसे जारी रखें। यह काम 'महात्मा गांधी रोजगार गारन्टी' जैसा ही गरीबी मिटाने वाला काम बन सकता है।

जल का काम किसी सरकार का काम नहीं होता। जल का काम सबके लिए और सभी के साथ मिलकर किया जाता है। जब भी इस काम को कोई अपना अकेले का काम मानता है, तो शुभ नहीं होता। ऐसे में यह किसी एक की लाभकारी योजना बनकर अन्य को उससे हटा देती है। अत: जल-साक्षरता सभी के लिए जरूरी है। 'सभी के लिए शुभ' के लिए यह सभी के लिए लाभकारी भी बननी चाहिए। एक के लिए नहीं, जब सभी के लिए लाभकारी होती है; तब ही यह शुभकारी भी स्वत: बन जाती है। जब कोई भी काम सभी के हित का बराबर ख्याल रखता है, तभी हम समता की तरफ सादगी से बढ़ जाते हैं। जब कोई भी एक अपना लालच पूरा करता है, तो उसमें जटिलताएं जन्म लेतीं हैं। समता या सादगी हमारा सतयुग बनाता है। जटिलताएं कलयुग का निर्माण करती हैं। आज हमारे जीवन में जटिलातएं हैं; तभी तो सभी तरफ हिंसा है। इस हिंसा को रोकना ही सत्कर्म होगा।

आज हमारे बीच बापू (महात्मा गांधी) होते, तो वे समता के लिए सादगी को औजार बनाते। जैसे आजादी दिलाने के लिए चरखा दिया था, वैसे ही वे आज जल की लूट रोकने हेतु जल संरक्षण संवाद शुरू करके तालाब बनवाते। तालाब निर्माण सामुदायिक विकेन्द्रित जल प्रबंधन की प्राचीन भारतीय परम्परा है; जो जल पर सभी का समान हक कायम करती है।

तालाब का जलोपयोग हक सभी को समान है। इससे सभी लोग जल लेते रहे हैं। इन पर अतिक्रमण, प्रदूषण और भूजल शोषण से ये अब नष्ट होते जा रहे हैं। बापू आज चर्खे की ही तर्ज पर तालाब निर्माण का संदेश देकर देश को पुनः खड़ा कर देते। अब एक नहीं बहुत सारे महात्मा-बापू बनने होंगे। तभी हम दुनिया को जल संकट से बचा सकते हैं और जल के लिए चालू विश्वयुद्ध में शांति कायम कर सकते हैं।

– जलपुरुष राजेन्द्र सिंह